भारतीय भाषाएं
विकासशील समाज में पहचान का माध्यम

अंजनी कुमार सिन्हा

भाषावैज्ञानिकों और जनगणना विशेषज्ञों का कहना है कि यद्यपि अल्पसंख्यक समुदाय अपनी पहचान बनाए रखने के लिए अपनी भाषा को सजीव रखने का भरसक प्रयास करता है लेकिन वह शायद ही इसमें सफल होता है। इस मत की पुष्टि का साक्षात् उदाहरण है– संयुक्त राज्य अमेरिका जो यूरोप, एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका से आए हुए विभिन्न समुदायों का देश है। यद्यपि इन समुदायों की अलग–अलग भाषाएं और बोलियां थीं, किंतु संयुक्त राज्य अमेरिका मुख्य रूप से एकभाषी देश है। यह सही है कि 1983 की अमरीकी जनगणना में यह कहा गया है कि उस देश में 83 विभिन्न बोलियां बोली जाती हैं किंतु जहां तक ठोस आंकड़ों का प्रश्न है, सिर्फ़ निम्नलिखित भाषाओं का विवरण दिया गया है : स्पैनिश 1,46,00,000, चीनी 8,06,000, जापानी 7,01,000 कोरियन 3,54,000 और वियतनामी 2,61,000 (गार्जियन, 24 जून 1984)। यद्यपि अमरीकी संविधान में किसी भाषा को राष्ट्रभाषा की संज्ञा नहीं दी गई है, लेकिन यह स्पष्ट रूप से लिख दिया गया है कि उसी व्यक्ति को अमरीकी नागरिकता दी जाएगी जो अंग्रेज़ी भाषा जानता है। हाल में कुछ चुनिन्दे नगरों के स्कूलों में कुछ ग़ैर–अंग्रेज़ी भाषाओं को पढ़ाने की व्यवस्था की गई है, लेकिन अधिकांश स्कूलों में इस तरह की कोई व्यवस्था नहीं है। अधिकांश अप्रवासी अपने बच्चों को अपनी मातृभाषा सिखाने के लिए रविवारीय विद्यालयों का सहारा लेते हैं, जो उनके सामुदायिक संगठनों या चर्च द्वारा चलाए जाते हैं। स्पष्ट है कि इस तरह की व्यवस्था अधिक दिनों तक कारगर ढंग से नहीं चल पाती है और तीसरी पीढ़ी के आते–आते अप्रवासी अमरीकी अपने बाप–दादाओं की भाषाएं भूलने लगते हैं। जातीय चेतना के जागरण की पृष्ठभूमि में ग़ैर–अंग्रेज़ी भाषाओं को स्कूलों में पढ़ाने की जो व्यवस्था अमेरिका में की जा रही है, उससे राजनीतिज्ञों का एक बड़ा तबक़ा असंतुष्ट है, जैसा कि सिनेटर वाल्टर इडलस्टन के इस वक्तव्य से स्पष्ट है : अगर हम हाल में अपनाए गए रास्ते पर चलते रहे तो मेरा विश्वास है कि हम अपनी उस एकता की जिसे हमारी उभयनिष्ठ भाषा ने बना रखा है, अपूरणीय क्षति पहुंचाएंगे (वही)।

यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरिका और भारत दोनों जनतांत्रिक देश हैं, भाषा के संदर्भ में देखने पर भारत की स्थिति अमेरिका से बिल्कुल भिन्न है। देश के बंटवारे के संदर्भ में स्वतंत्रता की प्राप्ति के समय और उसके बाद सिंधी भाषाभाषी पाकिस्तान से भारत आए और देश के विभिन्न भागों में बस गए। इस बात के प्रायः पचास साल बीत गए हैं किंतु अभी भी भारत में, 1981 की जनगणना के अनुसार, 20,44,389 सिंधीभाषी हैं (जिसमें कच्छीभाषी भी शामिल हैं) ये देश के नौ राज्यों और एक संघीय क्षेत्र में बिखरे हुए हैं। सिंह और मनोहरन के अनुसार यह भाषा इकसठ समुदायों के द्वारा बोली जाती है (लैंग्वुएज एंड स्क्रिप्ट्स, पीपुल ऑफ इंडिया, खंड नौ, कुमार सुरेश सिंह और एस. मनोहरन)। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जो दूसरा अप्रवासी काफ़ी संख्या में भारत में आया है, वह तिब्बतियों का है। 1981 की जनगणना के अनुसार, उनमें 63, 431 ऐसे तिब्बती हैं जो भारतीय नागरिक हैं और इस भाषा का मातृभाषा के रूप में प्रयोग करते हैं, वे मुख्यतः अरुणाचल प्रदेश, दिल्ली और सिक्किम के निवासी हैं। (इस आंकड़े में तिब्बती शरणार्थी सम्मिलित नहीं हैं)। अगर हम यह कहकर बात टाल दें कि ये तो तिब्बतियों की पहली या दूसरी पीढ़ी है और बाद की पीढ़ियां अपनी भाषा भूल जाएंगी तो यह ग़लत होगा क्योंकि हमारा इतिहास ऐसा नहीं बताता। पिछले चालीस वर्षों में चीनियों का अप्रवास नहीं हुआ है, अर्थात् जो भी भारतीय

चीनी नस्ल के हैं, वे कम–से–कम दूसरी या तीसरी पीढ़ी के हैं, फिर भी 1971 की जनगणना के अनुसार हमारे देश के 10,958 नागरिक चीनी भाषा को मातृभाषा के रूप में बोलते हैं। ये चीनी मुख्यतः पश्चिम बंगाल में रहते हैं। उसी प्रकार 10,504 भारतीय फारसी को अपनी भाषा मानते हैं। ये फारसी बोलनेवाले हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश के निवासी हैं। 1971 की जनगणना के अनुसार पंजाब, जम्मू–कश्मीर और चण्डीगढ़ में रहनेवाले 8,688 भारतीय नागरिक पश्तोभाषी हैं। 1981 की जनगणना के अनुसार 28,116 भारतीय नागरिक अरबीभाषी हैं। ये मुख्यतः आंध्र प्रदेश के निवासी हैं, पांडिचेरी में रहनेवाले 2,593 भारतीय फ्रेंच बोलते हैं। असम में रहनेवाले 1,381 भारतीय नागरिकों ने यह दावा किया है कि उनकी मातृभाषा ताई है। उसी प्रकार अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह में रहनेवाले 2,871 भारतीय नागरिक बर्मी को अपनी मातृभाषा मानते हैं। पश्चिम बंगाल के 62 भारतीय नागरिक अर्मेनियनभाषी हैं और दिल्ली नगर के 506 व्यक्ति हिब्रू को अपनी मातृभाषा मानते हैं। पांडिचेरी के 13 भारतीय नागरिकों ने लाओशियन को अपनी मातृभाषा बताया है। इन सभी नागरिकों के पूर्वज काफ़ी पहले भारत में आए थे। इनकी भाषाएं जीवित हैं जो इस बात को प्रमाणित करती है कि भारतीय समाज अल्पभाषियों की भाषाओं को जीवित रखने के लिए प्रोत्साहित करता है। यही कारण है कि भारत के 2,02,440 ऐंग्लो इंडियनों ने बिना झिझक अंग्रेज़ी को अपनी मातृभाषा घोषित किया है। ऐसा नहीं कि ये तिब्बती, चीनी, फारसी, पश्तो, हिब्रू, अरबी या अर्मेनियन बोलनेवाले भारतीय मूल की कोई भाषा नहीं बोलते। इनमें से अधिकांश कम–से–कम द्विभाषी हैं। दूसरे भाषाभाषियों से घिरे रहकर भी इन्होंने अपनी भाषा को जीवित रखा है क्योंकि ये इसे अपनी पहचान के लिए आवश्यक मानते हैं।

जिस प्रकार पहचान बनाए रखने के लिए अपेक्षाकृत नए अप्रवासी भारतीय अपने पूर्वजों की भाषा को संजोए हैं, उसी प्रकार अन्य समुदाय के लोगों ने भी अपनी मातृभाषा को बचा रखा है। उदाहरण के लिए, तिब्बती–बर्मन समूह की एक भाषा बोडो को लें, जो 1981 की जनगणना के अनुसार असम, मेघालय और पश्चिम बंगाल में 28,619 लोगों द्वारा बोली जाती है। इसी ग्रुप की दो अन्य भाषाएं हैं दोआरी (9,103) और करबी (मिकिर) (12,600) ये सभी भाषाएं बोडो समुदाय के व्यक्ति अपने समुदाय के अंतर्गत ही संपर्क के लिए प्रयोग में लाते हैं, दूसरे समुदायों से संपर्क सूत्र बनाए रखने के लिए ये अन्य भाषाओं का प्रयोग करते हैं।

नागा समुदाय के विभिन्न उपसमुदायों की पहचान अपनी–अपनी अलग भाषा से की जा सकती है। अंगामी, आओ, चक सांग, चांग, जेमा, कबुई, कुछ, खिमानगन, कोनयक, लोथा, माओ, मरम, मरिंग, फोम, पोचुरी, रेंगम, संगतम, सेमा, तांगखुल, यिमचुनगर और जेलियांग उपजातियों की भाषाएं भी इन्हीं नामों की हैं (सिंह व मनोहरन, वही, पृ. 87–88)। पीपुल ऑफ इंडिया सर्वे में इक्कीस नागा उपजातियों और उसकी इक्कीस भाषाओं का उल्लेख है। भिन्न उपजातियां आपस में 'नागामीज' में बातें करती हैं जो असमिया भाषा को आधार बनाकर एक तरह की खिचड़ी भाषा है। प्रायः सोलह उपसमुदायों के लोग इसका प्रयोग करते हैं। तेरह उपसमुदाय हिन्दी का, चार असमिया या मैनी (मणिपुरी) का, चार अंगामी का, तीन कबुई का, दो कोनयन का और एक बांग्ला का प्रयोग अंतर–उपसमुदाय संचार के लिए करते हैं। इस सर्वे के अनुसार, सभी उपजातियां कम–से–कम द्विभाषी हैं। बारह उपजातियों के लोग तीन भाषाओं का प्रयोग करते हैं और पांच उपजातियों में मातृभाषा के अतिरिक्त चार भाषाओं का प्रयोग किया जाता है। स्मरण रहे कि नागालैंड में प्रशासन और शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी है और हिन्दी जाननेवालों की संख्या भी कम नहीं है। मैंने नागा जनजाति और उसकी उपजातियों की चर्चा विस्तार से इसलिए की है कि हम परिस्थिति की संश्लिष्टता और गतिशीलता को समझ सकें। ये सभी उपजातियां अपने आप पर और अपनी भाषा पर गर्व करती हैं और ऐसा समझती है कि अपनी पहचान के लिए भाषा को जीवंत बनाए रखना आवश्यक है। जिन उपजातियों के लोग–दूसरी उपजातियों से जितना अधिक मिलते–जुलते हैं, उनके बीच उतनी ही अधिक बहुभाषिकता है। इसके अतिरिक्त ये जनजातियां उस क्षेत्र के समतल क्षेत्र के रहनेवालों से बातचीत के लिए नागामीज का प्रयोग करती हैं और उत्तरी पूर्वी भारत के

बाहर के भारतीयों से बातचीत के लिए अंग्रेज़ी या हिंदी का, संक्षिप्त में यों कहा जा सकता है कि नागा जनजाति की विभिन्न उपजातियों के लोग अपनी पहचान के लिए आपस में अपनी मातृभाषा का प्रयोग करते हैं। दूसरी उपजातियों से बातचीत के लिए उनकी भाषा का या नागामीज का प्रयोग करते हैं। अपने क्षेत्र से बाहर के लोगों से बातचीत के लिए हिन्दी या अंग्रेज़ी का प्रयोग करते हैं। एक औसत नागा व्यक्ति के लिए 'बाहरी व्यक्ति' का अर्थ है 'नागा जनजातियों के निवास–स्थान (नागालैंड और मणिपुर) से बाहर का व्यक्ति चाहे वह बिहार का हो या पंजाब का या इंग्लैड का।

अगर नागा जनजाति की भाषा संबंधी उदारता उन्हें बहुभाषी बना देती है तो गोआ निवासियों का भाषा विमोह उन्हें संकीर्ण विवादों और झगड़ों में उलझाए हुए है। गोआ के मूल निवासियों का एक बड़ा हिस्सा कोंकणीभाषी है, स्मरणीय है कि कोंकणी इंडो–आर्यन ग्रुप की दक्षिणी शाखा की भाषा है। मराठी भी इसी ग्रुप की भाषा है, फिर भी मराठी और कोंकणी बोलनेवालों के आपसी संबंध अच्छे नहीं हैं। इसका जितना संबंध इन भाषाओं की संरचनात्मक विभेद से हैं, उससे ज़्यादा संबंध इस बात से है कि मराठी इस क्षेत्र के मराठों की भाषा है और कोंकणी सारस्वत ब्राह्मणों, दैव्यायन ब्राह्मणों और कैथलिकों की। द्रष्टव्य है कि जो मराठे कोंकणीभाषी हैं वे अपने को गोमंतक मराठी कहते हैं, महाराष्ट्रीय (मराठी) नहीं। दूसरे शब्दों में, यों कहें कि झगड़े की जड़ मराठों और गोअनीज जन समुदाय का स्वार्थ है, भाषाएं उसकी पहचान और प्रतीक बनकर रह गई हैं। विभिन्न समुदायों को लगता है कि अगर कोंकणी या मराठी उन पर थोपी गई तो उनका वैशिष्ट्य ख़त्म हो जाएगा। यही बात कर्नाटक राज्य में स्थित बेलगांव के संबंध में भी कही जा सकती है। वहां के कन्नड़भाषियों और मराठीभाषियों का झगड़ा तब से चल रहा है जब से भाषाधार राज्यों का गठन हुआ है। शायद यह तब तक चलता रहेगा जब तक निष्पक्ष जनमत के आधार पर बेलगांव का विभाजन नहीं हो जाएगा। स्मरणीय है कि सिर्फ़ गोआ और बेलगांव में ही ऐसे झगड़े नहीं हैं। नेपालीभाषी और अन्य भाषाभाषी लोगों के बीच सिक्किम और दार्जिलिंग में जो झगड़े और विवाद होते रहते हैं, वे अपनी अलग पहचान को लेकर हैं भाषाएं उस पहचान के प्रश्न को सिर्फ़ तीव्र कर देती हैं, वे इनकी अभिव्यक्ति मात्र हैं, कारण नहीं। ये इस बात का द्योतक हैं कि अन्य समुदाय विकासोन्मुख भारत में अपनी पहचान बनाए रखना चाहते हैं और अपना स्थान लाभप्रद बनाना चाहते हैं।

1881 से लेकर 1991 तक की भारतीय जनगणना में लोगों से सिर्फ़ यह पूछा जाता रहा है कि उनकी मातृभाषा क्या है और वे दूसरी और कौन–सी भाषाएं जानते हैं। इसके विपरीत, पीपुल ऑफ इंडिया प्रोजेक्ट में दो प्रश्नों पर ज़ोर दिया गयाः

(क) आपके घर और परिवार में किस भाषा या बोली का प्रयोग किया जाता है? उसे किस लिपि में लिखा जाता है?

(ख) अपने समुदाय या उपजाति से बाहर के लोगों के संपर्क में रहने के लिए आप किस भाषा या बोली और लिपि का प्रयोग करते हैं?

इन प्रश्नों की अपनी अहमियत है जिसे हिन्दी–उर्दू के संदर्भ में समझा जा सकता है। सर्वे के अनुसार भारतीय मुसलमान आपस में सिर्फ़ उर्दू–बांग्ला या मलयालम में बातचीत करते हैं लेकिन अंतर–समुदाय बातचीत के लिए वे हिंदी या क्षेत्रीय भाषा का प्रयोग करते हैं। सिर्फ़ गढ़वाल क्षेत्र के मुसलमानों ने कहा है कि वे उर्दू की जगह आपसी बातचीत में भी हिंदी या गढ़वाली का प्रयोग करते हैं। हिन्दी क्षेत्र के बारह कच्छ के मुसलमानों ने स्वीकार किया है कि वे कच्छी में बातचीत करते हैं। यहां यह कहना आवश्यक नहीं है कि भाषा की संरचना की दृष्टि से हिन्दी और उर्दू में शायद ही कोई अंतर है। अगर भिन्नता है तो वह शब्द–भंडार के स्तर पर है, व्याकरणिक नहीं है। हां, लिपि का अंतर तो है ही। यह बात महत्त्व की है कि मुसलमान समुदाय मुख्यतः फारसी–अरबी लिपि का प्रयोग करता है और हिन्दू समुदाय देवनागरी लिपि का। इसी अंतर को भाषाई अंतर मान लिया गया है जिसे अधिकांश मुसलमान अपनी पहचान के लिए एक आवश्यक अंतर मानते हैं। इस संदर्भ में संथाली की चर्चा अप्रासंगिक नहीं होगी जो ऑस्ट्रोएशियाटिक परिवार की मुण्डा शाखा की भाषा है। इसे संथाली

जनजाति के लोग मातृभाषा के रूप में बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, असम और त्रिपुरा के कुछ क्षेत्र में बोलते हैं। बिहारी संथाली इसे देवनागरी लिपि में लिखते हैं, बंगाली संथाली बांग्ला लिपि में और उड़ीसा के संथाली ओड़िया लिपि में, कुछ ईसाई संथाली इसे रोमन लिपि में लिखते हैं और कुछ कट्टरपंथी संथाली अपनी अलग लिपि में। इस लिप्यंतर का भाषा पर कोई असर नहीं है, संथाली भाषा एक ही समझी जाती है। इसकी वजह यह है कि संथालियों की अपनी अलग जनजातीय पहचान है जो लिपि पर निर्भर नहीं है। उनका रुझान विभिन्न राज्यों में फैले संथालियों को एक सूत्र में करने की ओर है जिसमें संथाली भाषा सहायक है चाहे वह किसी भी लिपि में रखी जाए।

पीपुल ऑफ इंडिया प्रोजेक्ट के अनुसार भारत में 4,635 नृजातीय (इथनोग्राफिक) समुदाय हैं जिनमें से 4,536 समुदायों के बारे में तथ्य इकट्ठे किए गए हैं। इनमें से 2,209 समुदायों को मुख्य समुदाय की संज्ञा दी गई है, 586 समुदायों को 'खंड' (सेग्मेंट) माना गया है और 1,840 को क्षेत्रीय इकाई के रूप में देखा गया है। सर्वे के अनुसार सिर्फ़ 325 भाषाएं ऐसी हैं जिन्हें मातृभाषा या पारिवारिक भाषा के रूप में बोला जाता है। उनमें 96 भाषाएं ऐसी हैं जिनका प्रयोग द्विभाषी या बहुभाषी समाज द्वारा किया जाता है।

इसके अलावा जो बोलियां हैं, उन्हें मातृभाषा के रूप में बोलनेवाले भी किसी भाषाविशेष की उपभाषा या बोली मानते हैं। अगर हम सर्वे के आंकड़ों की तुलना 1961 की जनगणना में एकत्र भाषा संबंधी आंकड़ों से करें तो पाएंगे कि भारत में शायद ही कोई भाषा लुप्त हुई है। 1981 की जनगणना भी इस बात की पुष्टि करती है। इस जनगणना के अनुसार हिन्दी बोलनेवालों की संख्या 38 प्रतिशत से बढ़कर 42.88 प्रतिशत हो गई है जो ख़ासकर हिन्दी के दूसरी भाषा के रूप में बढ़ते प्रयोग के कारण हुआ है। हिन्दी द्विभाषियों की संख्या 1,76,20,783 से बढ़कर 4,44,02,182 हो गई है जिसमें 17.14 प्रतिशत लोग ऐसे हैं जिनकी मातृभाषा मलयालम है। 9. 69 प्रतिशत तमिलभाषी, 6.81 प्रतिशत तेलुगुभाषी और 6 प्रतिशत कन्नड़भाषी हिन्दी को दूसरी या अन्य भाषा के रूप में प्रयोग में लाते हैं, अण्डमान के निवासियों ने तो अपनी अलग हिन्दी बना ली है जिसे 'अण्डमानी हिन्दी' कहते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि विभिन्न समुदाय भाषा और बोलियों का प्रयोग अपने आपको एक सूत्र में पिरोने के लिए करते हैं और दूसरे समुदाय से अपने को अलग–अलग रखने एवं अपनी अलग पहचान बनाए रखने के लिए भी। ऐसा नहीं है कि भारत में भाषाई झगड़े नहीं होते लेकिन आमतौर पर भारतीयों में भाषा के प्रश्न पर असीम सहिष्णुता है जिस कारण सभी भाषाएं जीवंत हैं और द्विभाषियों की संख्या बढ़ती जा रही है। फलतः एक ओर भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित भाषाओं को बोलनेवालों की संख्या बढ़ रही है तो दूसरी ओर उन क्षेत्रीय भाषाओं और बोलियों में भी सृजनात्मक कार्य हो रहा है जो अब तक मौखिक परंपरा पर निर्भर थीं। यही हमारे बहुभाषी समाज की सबसे बड़ी संपत्ति है। हमें इन विरोधाभासी लगनेवाली प्रवृत्तियों से घबराने के बजाय उन्हें समझने की चेष्टा करनी चाहिए और उनके प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।